प्रसंगशः

आलोक मेहता

बिन खेती-पानी विकास सब सून

चमकते बाजार के चक्कर में 15 सालों में कृषि पर पूंजी निवेश न होने से गड़बड़ाई व्यवस्था

चलिए यह गलतफहमी दूर हो गई कि अर्थशास्त्री रहते हों, मनमोहन सिंह सत्ता में आने के बाद खेत-किसान की खस्ता हालत से अनभिज्ञ हैं। जापान-यात्रा से वापस आने के बाद एक गंभीर सार्वजनिक कार्यक्रम में उन्होंने न केवल कृषि क्षेत्र में उत्पन्न निराशा और बिगड़ती हालत पर चिंता जताई, वरन तीन महीने बाद ही फिर से राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक का ऐलान भी कर दिया। ढाई साल में सैकड़ों किसानों की आत्म-हत्या के बाद भी इस मुद्दे पर ध्यान नहीं दिया गया तो अगले 10 वर्षों में दुर्भिक्ष और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। ग्रामीण ढांचागत स्थिति पर आई ताजा रिपोर्ट ने भी असलियत उजागर कर दी है। असल में 15 वर्षों के दौरान अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता तथा चमचमाते बाजार के चक्कर में विभिन्न राजनीतिक दलों की शक्ति-संपन्न सरकारों ने भाषणों में बड़े झांसे दिए लेकिन कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश पर कोई ध्यान नहीं दिया। 'शाइनिंग इंडिया' की भाजपा नेतृत्व वाली सरकार ने चार साल पहले कृषि-सिंचाई-बिजली को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर बड़ी पूंजी लगाने संबंधी बी.बी. भट्टाचार्य (प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और अब जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलपति) समिति की वृहद रिपोर्ट को विकास फाइलों के अंबार में दफन कर दिया। भाजपा के जसवंत सिंह, यशवंत सिन्हा, अरुण शौरी आंकड़ों की बाजीगरी कर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कृत्रिम भाव बढ़ाते रहे। वैसे वर्तमान वित्त मंत्री पी. चिदंबरम भी इस मामले में कम नहीं हैं और उन्हें किसानों की अपेक्षा 'कंट्री प्रोफाइल-इमेज' इत्यादि का मोह अधिक है। इसी कारण कांग्रेस, कम्युनिस्ट या संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के सांसद ही नहीं, कई मंत्री भी उनकी बेरुखी से क्षुब्ध रहते हैं। बार-बार चीन से तुलना की आवश्यकता जताई जाती है लेकिन यह भुला दिया जाता है कि चीन के पास 1 खरब डॉलर की विदेशी मुद्रा का भंडार है और उसने विदेशी पूंजी के लिए दरवाजे खोलने के बावजूद कृषि क्षेत्र की अनदेखी नहीं की है।

ग्रामीण ढांचागत स्थिति पर हाल में जारी रिपोर्ट किसी गांधीवादी या कम्युनिस्ट प्रभावित संगठन की नहीं है। इसे एक आधुनिक औद्योगिक घराने के सर रतन टाटा ट्रस्ट ने महीनों अध्ययन के बाद तैयार किया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम सुविधाएं देने के लिए सड़क, पानी, संचार और बिजली के क्षेत्र में कम से कम 1,58,00,313 करोड़ रुपये लगाने की आवश्यकता है। इस लक्ष्य के लिए सरकार निजी क्षेत्र की कंपनियों को भी प्रोत्साहित कर सकती है जो अब तक केवल शहरी क्षेत्र पर ध्यान देती रही हैं। दिल्ली को वाशिंगटन से या मुंबई को शंघाई से टक्कर देने लायक बनाने के फेर में पड़े धंधेबाज अफसर और नेता इस बात से कैसे इनकार कर सकते हैं कि मध्य प्रदेश और उड़ीसा जैसे राज्यों के गांवों के मात्र 4 से 5 प्रतिशत घरों में छोटे से शौचालय की व्यवस्था है। हमारे महान क्रांतिकारी कम्युनिस्ट शासित पश्चिम बंगाल तक के गांवों में औसतन केवल 9.05 प्रतिशत लोगों के घरों में कामचलाऊ लैट्रिन बनी हुई है। सफाई और पेयजल उपलब्ध कराने की दिशा में अभी कई हजार करोड़ रुपये पूंजी लगाने की आवश्यकता है। समस्या यह भी है कि ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने के कार्यक्रम केंद्र सरकार बना ले या घोषित कर दे, तब भी राज्य सरकारें ही उन्हें अपने ढंग से क्रियान्वित करती हैं। रेलवे की बनी बनाई व्यवस्था में बिना कुछ करे-धरे पीठ थपथपाने वाले लालू या उनकी भली धर्मपत्नी राबड़ी देवी ने बिहार को केंद्रीय अनुदान आवंटन का लाभ उठाने लायक नहीं बनने दिया। शौचालय, मकान, सड़क, स्कूल, अस्पताल तक के लिए धेला खर्च न करके कस्बों और गांवों को बर्बादी के कगार पर पहुंचा दिया। हां, भाई-बंधु अवश्य मुंछ पर ताव देने, लाठी-गोलियां चलाने और गहत कार्यों में घोटाले करने में 'एक्सपर्ट' होते चले गए। घोषित आय से अधिक संपत्ति के मामले में लालू-राबड़ी को कानूनी राहत मिल गई, लेकिन स्कूटर, मोटर साइकिल पर बैठाकर गाय-भैंस, बकरी गांवों में पहुंचाने या एक ट्रक में ढाई सौ गाय ढो देने के फर्जीवाड़े वाले बहुचर्चित चारा-कांड की कोई असलियत तो आने वाले महीनों में उजागर होगी। यह किस्सा इसलिए बताया गया कि यदि भूले-भटके लालूजी को आदर्श बताने वाली कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार वाली समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम उसी तर्ज पर क्रियान्वित करेगी तो राष्ट्रीय विकास परिषद तथा योजना आयोग के सारे सपने चकनाचूर होने वाले हैं।

> भाजपा नेतृत्व वाली सरकार ने कृषि-सिंचाई-बिजली को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर बड़ी पूंजी लगाने संबंधी भट्टाचार्य समिति की रिपोर्ट को विकास फाइलों के अंबार में दफना दिया।

भारत की 60 प्रतिशत से अधिक आबादी अब भी उन सुदूर गांवों में है जो न्यूनतम सुविधाओं से वंचित हैं। पेयजल और सफाई व्यवस्था के लिए 4,488 करोड़ रुपये, सड़कों पर 5,892 करोड़ रुपये, बिजली के लिए 55,243 करोड़ रुपये और संचार साधनों पर 92,690 करोड़ रुपये खर्च किए जाने की आवश्यकता को 'उदार अर्थशास्त्री' भी मान रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की हालत सुधारने से जुड़ा एक मुद्दा सब्सिडी का भी है। सवाल यह है कि केंद्र सरकार द्वारा आम जनता के लिए घोषित या सचमुच दी जाने वाली सब्सिडी का लाभ किसे मिल रहा है। हाल ही में घरेलू उपयोग की रसोई गैस के दाम बढ़ाने के प्रस्ताव को लेकर सरकार के कामरेड साथियों ने बड़ा बवाल मचाया लेकिन कोई उनसे पूछे कि रसोई गैस के सर्वाधिक उपभोक्ता शहरों, कस्बों में हैं या गांवों में। फिर श्रीमती चिदंबरम, श्रीमती राबड़ी देवी, श्रीमती वृंदा करात, श्रीमती कमला आडवाणी या श्रीमती मोदी या श्रीमती बिड़ला के घरों में उपयोग की जाने वाली रसोई गैस को उतनी ही सरकारी सब्सिडी क्या जरूरी है जितनी उड़ीसा, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, तमिलनाडु, मणिपुर के गरीब फटेहाल लोगों के लिए आवश्यक है? सरकार रसोई गैस, मिट्टी के तेल, अनाज, पानी, बिजली, खाद, मकान जैसी विभिन्न सुविधाओं के लिए आमदनी के आधार पर श्रेणियां बनाकर सब्सिडी निर्धारित क्यों नहीं करती? फिलहाल शहरों या सुविधा-संपन्न प्रभावशाली कस्बाई और ग्रामीण लोग सरकारी मेहरबानियों का लाभ उठा रहे हैं।

अमेरिका और यूरोप को रिझाने के लिए चतुर अधिकारी और नेता भारत के विशाल ग्रामीण क्षेत्र में बाजार की व्यापक संभावनाओं का झुनझुना बजाते हैं। लेकिन कोला या टी.वी. बेचने वाली परदेसी कंपनियों को क्या यह अहसास कराना जरूरी नहीं कि 44 प्रतिशत ग्रामीण आबादी तो ग्रामीण सड़क नेटवर्क तक से जुड़ी हुई नहीं है? हमारे भाजपाई बंधु प्रधानमंत्री सड़क योजना की तारीफ करते नहीं थकते, लेकिन टाटा ट्रस्ट की ताजा टिकाऊ रिपोर्ट में यह तथ्य भी उजागर हुआ है कि पिछले 10 वर्षों में ग्रामीण सड़कों के लिए मात्र 2,133 करोड़ रुपये ही खर्च हुए जबकि योजना आयोग के लक्ष्य के अनुसार भी जरूरत 15,643 करोड़ रुपये की थी। भाजपा राज के योजना आयोग में भी भाजपाई नेता ही कर्ता-धर्ता थे। इसलिए ग्रामीण विकास की अनदेखी के लिए किसी एक दल या गठबंधन को दोषी समझना ही गलत होगा। आर्थिक प्राथमिकताएं तय करने वाले सत्ता वर्ग की मानसिकता ही समान है। इस मानसिकता को बदलने के लिए वाशिंगटन, लंदन, टोक्यो, मॉस्को या बीजिंग से किताबी ज्ञान लेने की अपेक्षा डॉक्टरों की तरह आईएएस अफसरों, योजना आयोग के अर्थशास्त्रियों, भविष्य की आशा कहलाने वाले विभिन्न पार्टियों के युवा सांसदों को कम से कम एक-एक साल सुदूर गांव में रहने की अनिवार्यता लागू करनी होगी। तभी उन्हें गोबर से निकली ऊर्जा और परमाणु ऊर्जा का अंतर समझ में आएगा। ●